आर्य समाज के नियमों में वेदों का महत्व

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने वेद के महत्त्व को समझा और बताया कि वेद इस सृष्टि का आधार ग्रन्थ है, यह प्रभु की वाणी है। यह जीव मात्र को कल्याण के लिए परमपिता परमात्मा का हमारे लिए दिया हुआ अमूल्य उपहार है। इसलिए हम जीवन के आरम्भ से लेकर अंत तक वेद को अपने साथ रखते हुए उस में दिए आदेशों का पालन करें। जब स्वामी जी ने आर्य समाज की स्थापना की तो इस समाज के नियमों का सन्चय अन्य संस्थाओं के अनुरूप न कर इनका निर्माण वेद मन्त्रों के आधार पर ही किया। वेद में बहुत से मन्त्र यत्र-तत्र मिलते हैं, जो आर्य समाज के नियमों की व्याख्या कर रहे हैं। इस लेख को मैं दो खंडों में दे रहा हूँ। इस प्रथम भाग में प्रथम पांच नियमों की ही व्याख्या दी जा रही है शेष रहे पांच नियमों की व्याख्या दूसरे भाग में की जावेगी। स्थानाभाव से हम सब मन्त्रों को तो यहाँ उद्धृत न कर सकेंगे, हाँ ! प्रत्येक नियम के साथ एक-एक मन्त्र देने का यत्न करते हुए सिद्ध करने का प्रयास करेंगे कि आर्य समाज के नियम वेदादेश का पालन करते हुए ही बनाए गए हैं।

यथा :-

१. आर्य समाज के प्रथम नियम के आलोक में कहा गया है कि :-

“सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ।”

इस आधार पर दो विषयों की और इंगित किया गया है ।

१ सब सत्य विद्या

२ जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं

इस सब का अभिप्राय : यह है उन सबका मूल परमेश्वर जो :

(१) सब सत्य विद्या अर्थात् ब्रह्म विद्या में आता है तथा

(२) पदार्थ विद्या के अंतर्गत आता है अर्थात सृष्टि विद्या, प्रकृति विद्या अथवा हमारे इस जगत् के कारण की विद्या ।

इस जगत् में जितनी भी विद्याएँ हैं,सब इन दो विद्याओं के अंतर्गत ही आती हैं और परम पिता परमात्मा इन सब विद्याओं का आदि मूल है। इस का प्रमाण ऋग्वेद के मन्त्र संख्या १०.७१.१ में इस प्रकार दिया है :-

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं य त् प्रेरत नामधेयं दधान्य ।

यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीठोत्प्रेरणा तदेषां निहितं गुहावि ॥ ऋग्वेद१०.७१.१ ॥

ऋग्वेद का यह मन्त्र आर्य समाज के प्रथम नियम सम्बन्धी चर्चा का ही आलोक कर रहा है। मन्त्र बताता है कि सृष्टि के आरम्भ में वेदवाणी का प्रकाश चार ऋषियों क्रमश : अग्नि, अंगीरा, आदित्य और वायु के

हृदयों में परमपिता परमात्मा ने किया और इन ऋषियों के माध्यम से समस्त प्राणियों के अंत :करण में प्रकट हुई। इस व्यवस्था को मनु महाराज ने भी बड़े गौरव से स्वीकार किया है। अत : यह प्रथम नियम का मूल ऋग्वेद का यह मन्त्र ही है। इस सब से यह तथ्य सामने आता है कि वह परमात्मा आदि गुरु है, वह गुरुओं का भी गुरु होने के कारण स्मर्णीय है, वन्दनीय है।

२. आर्य समाज के दूसरे नियम में कहा है कि "ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करने योग्य है।" इस प्रकार इस नियम के माध्यम से ईश्वर के गुणों का वर्णन करते हुए बताया है कि वह प्रभु ही सृष्टि कर्ता है। प्रभु के यहाँ बीस नाम दिए हैं उन सब के लिए वेद में ही हमें अनेक मन्त्र मिलते हैं। यहाँ यदि इन सब बीस गुणात्मक नामों के लिए व्याख्या करें तो पूरी एक पुस्तक बन जावेगी। इसलिए सब नामो की चर्चा न कर केवल दो गुणात्मक नामों के लिए वेद मन्त्र की चर्चा करते हैं:-
यजुर्वेद के मन्त्र संख्या ३६.५ में ईश्वर के एक नाम सच्चिदानंदस्वरूप के सम्बन्ध में मन्त्र इस प्रकार उपदेश कर रहा है :

कस्त्वा सत्यो मदानां महिष्ठो मतास्दंध्स : । दृढा चिदरुजे वासु ॥ यजुर्वेद के ३६.५ ॥

ईश्वर अनादि भोगों से मिलने वाले आनंद से भी अधिक आनंदकर और तीनों कालों में एक जैसा है।

हमारा प्रभु इस सृष्टि के कण कण में व्यापक होने के साथ ऋग्वेद के मन्त्र १०.१२५.८ में आर्य समाज के इस दूसरे नियम के अंतिम भाग की चर्चा इस प्रकार की है –
अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाना भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्येतावती महिना संम्बभूव ॥ ऋग्वेद १०.१२५.८ ॥

मन्त्र उपदेश कर रहा है कि वह परमपिता परमात्मा ही सब को गति देता, सब भुवनों को बनाता एवं नाश करता है। यह दृश्यमान् सृष्टि उसकी महिमा व महती शक्ति से उत्पन्न हुई है।

इस से स्पष्ट होता है कि वह प्रभु सृष्टि कर्ता तो है ही इस के साथ ही साथ वह इस सृष्टि का ह्रास भी करता है।
३. आर्य समाज का तृतीय नियम इस प्रकार है : वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

इस नियम में दो बातों पर बल दिया गया है। प्रथम के अंतर्गत वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है तथा दूसरे के अंतर्गत वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। मनु महाराज ने धर्म के जो दस लक्ष्ण बताये हैं, यह ही धर्म को प्रतिपादित करते हैं। इन धारणीय लक्षणों के अतिरिक्त पञ्च महायज्ञों को नित्य करना भी धर्म के अंतर्गत स्वीकार किया गया है। इसे केवल धर्म ही नहीं अपितु परमधर्म कहा गया है। इस प्रकार वेद के स्वाध्याय को परमधर्म माना गया है। अथर्ववेद में इस सम्बन्ध में मन्त्र संख्या १०.८. ३२ में इस प्रकार कहा गया है :
देवस्य पश्य काव्यं ण ममार न जीर्यति ॥ अथर्ववेद१०.८. ३२ ॥

अर्थात् परमेश्वर के वेद रूपी काव्य को देख जो न कभी मरता है , न वह जीर्ण होता है, यह ज्ञान मानवमात्र के कल्याण के लिए सृष्टि के आरम्भ में पिता ने दिया था। अत : यह संहिता ज्ञान था, जिसे बाद में पुस्तक का रूप दिया गया। इस का स्वाध्याय प्रत्येक प्राणी के लिए आवश्यक है।

४ चतुर्थ नियम सत्य पर बल देता है यथा "सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।"
इस का भाव है कि जिस से हित हो सके वह सत्य है। सत्य शाश्वत होता है किसी काल में यह परिवर्तित नहीं होता। साधारण भाषा में हम कह सकते हैं कि सत्य को जानना मानना कहना तथा उसके अनुसार आचरण करना ही सत्य है। मनु महाराज ने जो धर्म के दस लक्षण बताये हैं उनमें सत्य भी एक है। विजय केवल सत्य की ही होती है वचनं श्रेय : अर्थात् सत्यवाणी ही श्रेष्ठ है। यजुर्वेद १९.७७ के अंतर्गत कहा गया है कि :
दृष्टवा रुपे व्याक्रोतु स्त्यान्रिते प्रजापति :।
अश्रद्धामन्रितेऽदधाच् पद्धछ सत्ये प्रजायांति ॥ यजुर्वेद १९.७७ ॥
ईश्वर ने रूपों को जानकर सच और झूठ को अलग अलग कर दिया है तथा सत्य में ईश्वर ने श्रद्धा को रखा है। ऋग्वेद ७.१०४.१२ में तो प्रभु ने बताया है कि सत्य को जानना सरल है।

५. आर्य समाज के पांचवें नियम में धर्म पर बल देते हुए कहा है "सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।"

आर्यसमाज का यह पंचम नियम हमें सब काम धर्मानुसार करने का आदेश देता है। धर्म क्या है, इस का वर्णन हम पीछे कर आए हैं। वास्तव में कर्तव्य पालन को ही हम धर्म कह सकते हैं। हमें स्वयं को बलवान् व शरीर को स्वस्थ रखना हमारा धर्म है। यश प्राप्त करने वाले जितने भी कार्य हैं वह सब धर्म पर ही आधारित होते हैं। वेद, रीति पालन और जो आत्मा को प्रिय लगे वही धर्म है। जीवन में सोलह संस्कार भी धर्म का मार्ग है। पंच महायज्ञ भी धर्म का अंग है। महर्षि ने संस्कार विधि में भी गृहस्थ के गुणों तथा दिनचर्या का जो वर्णन किया है, यह धार्मिक व्यक्तियों के लक्षण ही तो हैं। मनुस्मृति तथा मुड्कोपनिषद् में इस सम्बन्धी अनेक श्लोक मिलते हैं।

आर्य समाज का यह नियम किसी व्याख्या का मोहताज नहीं है इस में संसार के उपकार का आदेश देते हुए सकल संसार को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ बनाने का उत्तम उपदेश किया गया है। संसार का उपकार तभी संभव है जब हम शारीरिक रूप से उन्नत हों, आत्मिक रूप से भी उन्नत हों और समाज में भी हमें सम्मानित दृष्टि से देखा जावे। हम जानते हैं कि वेद में अनेक बार आर्य शब्द आया है। रामायण के राम माता सीता जी को आर्यपुत्री कह कर पुकारते हैं तो सीता भी राम को आर्यपुत्र ही कहती है। जिस वेद को कुछ ब्राह्मणों ने अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ती बना लिया था, स्वामी जी ने उनका मार्ग सब के लिए खोल कर सब के उत्थान का मार्ग बना दिया। इस प्रकार वेद के आलोक में यह नियम सब की उन्नति का मार्ग खोल देता है।

डॉ. अशोक आर्य
पॉकिट १/६१ रामप्रस्थ ग्रीन से.७

वैशाली २०१०१९ गाजियाबाद उ.प्र.भारत
चलभाष ९३५४८४५४२६